नोटबन्दी : किसकी सजा, किसका मजा?

देश-विदेश

पुस्तिका-10

विषय सूची

नोटबन्दी--किसकी सजा, किसका मजा?
नोटबन्दी जनता के जीने के अधिकार पर हमला है
नोटबन्दी से लाभ के दावे कितने सच, कितने झूठ
क्या भारत की अर्थव्यवस्था को कैशलेश बनाया जा सकता है
नोटबन्दी का असली कारण
अर्थव्यवस्था का संकट और उसका समाधान

नोटबन्दी--किसकी सजा, किसका मजा?

आज की दुनिया में गुजर-बसर के लिए नोट उतने ही जरूरी हैं जितना जिन्दा रहने के लिए हवा और पानी। 8 नवम्बर की रात प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 500 और 1000 के पुराने नोटों को रद्दी घोषित करके जीवन की इस अहम जरूरत का बड़ा हिस्सा जनता से छीन लिया। बाजार से गायब किये गये 500 और 1000 के नोटों का मोल देश के कुल नोटों का 86 फीसदी, यानी 14,17,000 करोड़ रुपये था। अपने बड़बोले अन्दाज में प्रधानमंत्री ने इसे काले धन पर 'सर्जिकल स्ट्राइक' बताया था। इस सर्जिकल स्ट्राइक का काले धर पर कोई असर हुआ हो या नहीं, लेकिन देश की मेहनतकश जनता पिछले एक महीने से इस हमले की मार सह रही है।

8 नवम्बर को मोदी के टी.वी. भाषण के बाद प्रचार किया गया कि तीन दिन में सब ठीक हो जायेगा। बाद में खुद मोदी ने यह समय सीमा बढ़ाकर 50 दिन कर दी। हालाँकि अभी तक जितने मुँह उतनी बात वाले अन्दाज में सरकार की तरफ से इतने ब्यान बदले जा चुके हैं कि कोई बता नहीं सकता कि इस हमले के घाव और कितने दिन तक टीसते रहेंगे।

वित्तमंत्री अरुण जेटली ने पहले कहा कि 2 या 3 हफ्तों में जब सभी एटीएम ठीक कर दिये जायेंगे तो हालात सामान्य हो जायेंगे। बाद में भुवनेश्वर की रैली में उनका कहना था कि लोगों को केवल 3 से 6 महीने तक परेशानी उठानी पड़ेगी। नीति आयोग के उपाध्यक्ष अरविन्द पनगढ़िया 3 महीने में स्थिति सामान्य हो जाने की बात कह रहे हैं। रिजर्व बैंक का कहना है कि बदलने के लिए उसके पास पर्याप्त नोट हैं, लेकिन वह इस सवाल का जवाब नहीं देता कि अगर नोट की कमी नहीं है, तो लोगों को क्यों नहीं दिये जा रहे हैं। नोटों की छपाई के जानकार लोगों का मानना है कि रिजर्व बैंक महीने में 30 करोड़ नोट छाप सकता है। यानी इस रफ्तार को देखते हुए स्थिति पूरी तरह सामान्य होने में 8 महीने तक का समय लग सकता है।

सरकार ने सहकारी बैंकों और समितियों को नोट बदली का अधिकार नहीं दिया था। उसका मानना था कि ये काले धन के अड्डे हैं। देश के देहाती इलाकों में इन्हीं बैंकों की शाखाएँ अधिक हैं। केरल व तमिलनाडु जैसे राज्यों में देहात में स्टेट बैंक जैसे सरकारी बैंकों की शाखाएँ गिनी-चुनी ही हैं। बहुत से इलाकों में लोगों को 50 किलोमीटर दूर जाकर नोट बदलवाना पड़ रहा है। इस समस्या ने देहात में नोटबन्दी की समस्या को और ज्यादा गम्भीर बना दिया है। दूसरी ओर बिग-बाजार जैसी बड़ी खुदरा व्यापार कम्पनियों को पुराने नोट के बदले सामान देने का अधिकार देकर सरकार ने उनके मुनाफे में भरपूर इजाफा करवाया।

सरकार का कहना है कि इस पूरी योजना को बिल्कुल गुप्त रखा गया था, लेकिन ऐसी अनेक खबरें आयी हैं जिनसे मालूम होता है कि सरकार के कुछ खास चहेते लोगों को इसकी जानकारी थी। भारतीय जनता पार्टी की बंगाल इकाई, जो भाजपा की सबसे छोटी इकाइयों में से एक है, उसने 1, 5 और 8 नवम्बर को कलकत्ता में 3 करोड़ रुपये अपने खाते में जमा कराये। नोटबन्दी के ठीक पहले भाजपा ने बिहार और उड़ीसा में लगभग 42 शहरों में जमीन खरीदी, जिसका भुगतान पूरी तरह नकदी में किया।

भाजपा के पूर्व विधायक और गुजरात उच्च न्यायालय के वरिष्ठ वकील जतिन ओझा ने सीधे प्रधानमंत्री पर आरोप लगाते हुए कहा है कि ''प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 500 और 1000 रुपये के नोट बन्द करने सम्बन्धी जानकारी अहमदाबाद के एक बड़े उद्योगपति को लीक कर दी थी। इस उद्योगपति की पत्नी ने 8 नवम्बर को दोपहर बाद 20 करोड़ रुपये के गहने खरीदे।'' गौरतलब है कि जतिन ओझा वही वकील हैं जिन्होंने गुजरात दंगों के मुल्जिम भाजपा नेताओं पर दर्ज हुए 2000 मुकदमों में बिना कोई फीस लिये उनकी जमानत करायी थी।

प्रधानमंत्री के प्रचारक टीवी चैनलों का कहना था कि नोटबन्दी की घटना इतनी गोपनीय थी कि वित्तमन्त्री को भी नहीं बतायी गयी। दूसरी तरफ, काफी पहले 8 अप्रैल को ही दूरर्शन की एक खबर में स्टेट बैंक की एक रिपोर्ट के हवाले से बताया गया था कि 500 और 1000 के नोट बन्द होने की चर्चा के बाद लोग अपना रुपया निकालकर सुरक्षित स्थानों, अर्थात सेफ हिवेन एसेट्स में निवेश कर रहे हैं। यही नहीं, एक वरिष्ठ पत्रकार ने यह खुलासा किया कि 8 नवम्बर को प्रधानमंत्री का भाषण लाइव नहीं, बल्कि पहले से रिकार्डिड था। केवल सितम्बर के महीने में ही बैंकों में अचानक 1 लाख 25 हजार करोड़ की नकदी जाम होना भी इस योजना की गोपनीयता पर सवाल खड़ा करता है।

योजना की शुरूआत में सरकार ने एक खाते में हर रोज 2,50,000 रुपये तक जमा करने और बदले में 4500 रुपये निकालने की छूट दी थी। इसके साथ ही यह शर्त भी रखी गयी थी कि जमा करनेवाला जिस रकम का स्रोत नहीं बता पायेगा उस पर 200 फीसदी का जुर्माना लगेगा। नोटबन्दी के बाद घोषित शर्तों में सरकार अब तक 26 बार बदलाव कर चुकी है।

अज्ञात स्रोतों से आयी रकम के बारे में नयी शर्त यह है कि सरकार 200 प्रतिशत जुर्माने की जगह उस रकम में से आधी रकम खुद लेकर आधी रकम जमाकर्ता को बाइज्जत वापस लौटा देगी। अवैध सम्पत्ति रखनेवालों को दिया गया यह नया तोहफा सरकार ने आयकर कानून में संसोधन करके भेंट किया है। इस संसोधन को सरकार ने संसद में धन विधेयक के रूप में 29 नवम्बर को पेश किया था और उसी दिन गुपचुप तरीके से बिना किसी चर्चा के इसे पास भी कर दिया।

इस नये संसोधन के जरिये सरकार ने काला धन रखनेवालों को 50 फीसदी टैक्स के रूप में सरकार के पास जमा करके बाकी 50 फीसदी को सफेद धन बना लेने की जो छूट दी है, वह तमाम गैर-कानूनी तरीकों से कमाये धन को कानूनी बनाने की कोशिश जैसी है। काले धन की उगाही के सरकार द्वारा दिये गये झाँसे में आकर देश की जो जनता अपने सारे काम-काज छोड़कर चुपचाप लाइनों में लगी खड़ी है, इस नये विधेयक से उसके दिल पर क्या गुजरेगी? सरकार खुद अपने तर्कों में फँसती नजर आ रही है। वह कहती है कि काला धन आतंकवाद को बढ़ाता है, तो क्या 50 फीसदी काला धन वापस लौटाकर सरकार आतंकवाद को बढ़ावा नहीं दे रही है?

अपनी रिपोर्ट में रिजर्व बैंक ने बताया है कि नोटबन्दी के एक महीने के अन्दर लगभग 12 लाख करोड़ रुपया बैंकों में वापस जमा हो चुका है। अर्थशास्त्रियों का अनुमान है कि बन्द किये गये नोटों के कुल मूल्य--14,67,000 करोड़ का 90 फीसदी बैंकों में लौट आयेगा। इस हिसाब से सरकार को लगभग 1,40,000 करोड़ के नये नोट (जनता के जमा किये गये नोटों के बदले दिये गये नये नोटों से अलग) छापने की छूट होगी, जिस पर सरकार का मालिकाना होगा। यानी नोटबन्दी से सरकार को 1,40,000 करोड़ रुपये का फायदा होगा। दूसरी ओर इस कवायद से अर्थव्यवस्था को होनेवाला नुकसान 1,28,000 करोड़ रुपये आँका गया है (100 से ज्यादा लोग अपनी अमूल्य जिन्दगी गँवा चुके हैं, करोड़ों लोग तकलीफ झेल रहे हैं, जो अर्थशास्त्रियों के हिसाब-किताब से बाहर है)। मतलब यह कि नोटबन्दी से सरकार को होनेवाला फायदा मात्र 12 हजार करोड़ का है। गौरतलब है कि नोटबन्दी के एक हफ्ते बाद ही जब स्टेट बैंक में 10 हजार करोड़ रुपये से ज्यादा की रकम हो गयी तो सरकार ने 63 उद्योगपतियों द्वारा बैंकों से लिये गये 7,016 करोड़ रुपये के कर्ज बट्टे खाते में डाल दिये। इससे पहले स्टेट बैंक में केवल 7 हजार करोड़ रुपये की ही नगदी बची थी। जाहिर है कि आम लोगों की जेब से नोट निकालकर अपने चहेते पूँजीपतियों को बिना देर किये लाभ पहुँचाया गया।

अनुमान है कि सरकार का 7 लाख करोड़ रुपया पूँजीपतियों के साथ कर विवाद में फँसा पड़ा है। पूरे देश पर आफत डालकर सरकार ने जो 12 हजार करोड़ कमाये हैं, यह रकम इसके 56 गुणे से भी ज्यादा है। सरकार चाहती तो करोड़ों लोगों के सामने मुसीबत खड़ी करने के बजाय आसानी से यह पूरी रकम पूँजीपतियों से उगाह सकती थी। लेकिन सरकार क्या चाहती है, यह अब किसी से छिपा नहीं है।

नोटबन्दी के इस फैसले से लोगों की जीविका पर आनेवाला संकट कम होने के बजाय लगातार बढ़ता ही जा रहा है। बैंकों की लाइन में मौत, आत्महत्या, इलाज के बिना मौत, कारोबार ठप्प होना, दिहाड़ी न मिलना, बेहद जरूरी काम नगदी के बिना न हो पाना आम बात हो गयी है। जनता का धैर्य अब जवाब देने लगा है। रोज-ब-रोज बैंकों पर पथराव, तालाबन्दी, सड़क जाम, धरना, प्रदर्शन, प्रधानमंत्री का पुतला फूँकने जैसी खबरें आ रही हैं। राज-बेराज हो जाने के खतरे को देखते हुए देश की न्यायव्यवस्था भी चिन्तित है। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने इस पूरे मामले पर सरकार से रिपोर्ट तलब की है। सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को चेतावनी देते हुए कहा है कि यदि जनता की कठिनाइयों का समाधान नहीं किया गया तो देश में दंगे भड़क सकते हैं।

यह सच है कि नोटबन्दी का जितना जबरदस्त विरोध होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ और यह भी सच है कि जनता का एक हिस्सा सरकारी प्रचार से भ्रमित भी हुआ। दरअसल जनता के गुस्से में कमी नहीं थी, लेकिन उसके गुस्से को विरोध में बदल देने और उसकी समझदारी साफ करने के लिए जिस राजनीतिक ताकत की जरूरत होती है, वह ताकत जनता के बीच से नदारद थी। संसदीय विपक्ष की किसी भी पार्टी ने जनता के बीच जाकर उसे संगठित करने और सरकार पर पलटवार करने का प्रयास नहीं किया। उल्टा, दिखावे के विरोध को भी केवल संसद के अन्दर की नूरा-कुश्ती तक सीमित करके, वे सरकार को फायदा पहुँचा रही हैं। जनता को दिखाने के लिए विरोध भी हो रहा है और सरकार मजे से अपने सारे फैसले भी लागू करती जा रही है। अगर विपक्ष की राजनीतिक पार्टियाँ जनता के बीच आकर, जनता को लामबन्द करती तो जनता का गुस्सा कब का सरकार और उसके फैसले को हवा में उड़ा चुका होता। दूसरी ओर, जनता के सच्चे हितैषी संगठनों की इतनी ज्यादा कमी है और जो हैं वे इतने ज्यादा कमजोर हैं कि बड़े स्तर पर सरकार के खिलाफ जनता को एकजुट नहीं कर सकते। अगर ये संगठन मजबूत होते तो जनता का गुस्सा विरोध तो क्या विद्रोह में बदल जाता।

विपक्षी पार्टियाँ ही नहीं, बल्कि सरकार में शामिल शिवसेना जैसी पार्टी भी इस मुद्दे पर सरकार के विरोध में है। इसे वे देश की जनता और देश के संघीय ढाँचे के लिए बेहद खतरनाक कदम बता रही हैं। संसद का शीतकालीन सत्र ठप्प पड़ा है। खुद भाजपा के पूर्व अध्यक्ष लाल कृष्ण अडवानी ने गुस्से में आकर कहा है कि सरकार संसद नहीं चलाना चाहती है। विपक्ष के सवालों का जवाब देने के लिए संसद में जाने के बजाय प्रधानमंत्री विदेशी दौरों और चुनावी रैलियों में मशगूल हैं। काले धन की बात करते-करते अचानक अब वे नकदी-मुक्त (कैशलेस) अर्थव्यवस्था की माला जपने लगे हैं। इसके बावजूद भी किसी भी संसदीय राजनीतिक पार्टी ने इस मुद्दे को लेकर जनता को लामबन्द करने की कोशिश नहीं की, क्योंकि ये सारी पार्टियाँ काले धन वालों को बचाना चाहती हैं, इसीलिए केवल संसद की चारदिवारी में नूरा-कुश्ती कर रही हैं।

नोटबन्दी का फैसला आये एक महीने से ज्यादा वक्त बीत चुका है, जनता की कठिनाई लगातार बढ़ती जा रही है, इसके बावजूद सरकार और उसका भाट बन चुका मीडिया का बड़ा हिस्सा लगातार दावा कर रहे हैं कि जनता इस फैसले से खुश है। खुद प्रधानमंत्री तोते की तरह बार-बार दोहरा रहे हैं कि पहली बार सरकार ने ऐसा फैसला लिया है जिससे गरीब खुश है और अमीर रो रहा है। यह जले पर नमक रगड़ने जैसा है।

क्या सचमुच इस फैसले से गरीब खुश हैं?

नोटबन्दी जनता के जीने के अधिकार पर हमला है

काले धन को लेकर सरकार की खोखली बयानबाजी और निकम्मापन किसी से छिपा नहीं है। सरकार पूँजीपतियों की लूट से पैदा हुए संकट की सजा गरीब मेहनतकश जनता को दे रही है। लोकसभा चुनाव (2013) का प्रचार करते वक्त नरेन्द्र मोदी कहते थे कि मित्रों, मैं देश की तकदीर बदलने की हिम्मत रखता हूँ...काले धन को सार्वजनिक कर दूँगा। काला धन आने से हर देशवासी के खाते में 15 लाख रुपये आ जायेंगे। देश का बच्चा-बच्चा जानता है कि काला धन कहाँ छिपा है। अगर भाजपा सत्ता में आयी तो इस धन की पाई-पाई देश में लायी जायेगी, इत्यादि-इत्यादि। यह तो हुई कथनी, लेकिन सरकार बनाने के बाद करती कुछ और ही है। 2014 के चुनाव से पहले ही स्विस बैंक अपने 268 भारतीय खाता धारकों की सूची सरकार को सौंप चुका था। इसके अलावा भी अलग-अलग देशों से मिली सूचना से सरकार के

पास 2000 से भी ज्यादा ऐसे लोगों के बारे में जानकारी है जिनके विदेशों में खाते हैं। सुप्रीम कोर्ट के बार-बार कहने के बावजूद भी सरकार ने आज तक उनके नामों को सार्वजनिक नहीं किया। 'पनामा पेपर्स' मामले में अमिताभ बच्चन और ऐश्वर्य राय का नाम सामने आने के बाद भी सरकार ने उनके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की। नोटबन्दी करके सरकार काले धन के ऊपर कुंडली मारकर बैठे इन साँपों के कुकर्मों की सजा मेहनतकश गरीब जनता को दे रही है।

मेहनतकश जनता के खिलाफ हुई नोटबन्दी की 'सर्जिकल स्ट्राईक' से अब तक 100 से ज्यादा लोगों की जान जा चुकी है, जिनमें 11 बैंक कर्मचारी हैं। 62 साल के जगदीश, जो चाय की दुकान चलाते थे, बैंक की कतार में ही खड़े-खड़े चल बसे। इसी तरह, स्कूल हेडमास्टर धरणीकान्त तीन दिन तक बैंक की कतार में लगने के बावजूद जब अगले हफ्ते होनेवाली बेटी की शादी के लिए रकम हासिल नहीं कर पाये, तो सदमे से उनकी मौत हो गयी। अगले दिन उनकी बेटी सविता, उनके क्रियाकर्म के, लिए पैसे लेने को बैंक की कतार में खड़ी थी।

नोटबन्दी से लोगों के जीवन में आयी रोजमर्रा की परेशानियों की सूची अन्तहीन है। किसी की नौकरी का फार्म जमा नहीं हो पाया तो किसी की स्कूल की फीस जमा न होने से साल बर्बाद हो गया। कोई अपने बीमार बच्चों, बुजुर्गों का इलाज नहीं करा पाया तो किसी की बेटी की शादी रुक गयी। इसी दौरान कुछ टीवी चैनल, 500 रुपये में लड़की की शादी की खबरें दिखा-दिखाकर, अपनी बेहयाई का प्रमाण भी देते रहे। इसी दौरान सत्ताधारी पार्टी के दो नेताओं ने 500 करोड़ लगाकर लड़की की शादी की। मोदी ने उनसे नहीं पूछा कि 500 करोड़ कहाँ से आये हैं। टीवी चैनल खुशहाल इलाकों या शहरों की तस्वीरें दिखाने में ही तल्लीन रहे। देहात के बहुत बड़े पिछड़े हिस्से, पर्वतीय हिस्से, आदिवासी बहुल हिस्से की किसी ने सुध नहीं ली, जहाँ लोग हाड़ कँपाती ठण्ड में दो-दो दिन की पैदल यात्रा करके, दो-दो हजार रुपये बदलवाने के लिए कई-कई दिनों तक लाइनों में लगे रहे।

आज, नोटबन्दी की घोषणा के एक महीने बाद, स्थिति और भी ज्यादा भयावह हो गयी है। पहले से ही कर्ज में दबे करोड़ों किसानों और मजदूरों की जीविका उजड़ चुकी है। खेत खाली पड़े हैं और छोटे-छोटे काम-धन्धे ठप हो गये हैं। रेहड़ी, खोमचे, पटरी, रिक्शा और दिहाड़ी के सहारे जिन्दगी गुजारने वाली असंगठित क्षेत्र की भारी आबादी, पिछले एक महीने में काम-धन्धे उजड़ जाने के चलते भुखमरी के कगार पर पहुँच चुकी है।

जनता के सर पर मुसीबत लादने के बाद भी सत्तापक्ष के नेता और प्रचारक अपनी जात दिखाने से बाज नहीं आ रहे हैं। स्वामी रामदेव ने सरकार के नोटबन्दी अभियान का विरोध करनेवालों को 'राष्ट्रद्रोही' बताया है, तो वित्तमंत्री अरुण जेटली ने जान गँवा चुकी जनता का मजाक उड़ाते हुए कहा कि ''आजादी की लड़ाई में भी तो लोग मारे गये थे।''...''बैंकों में भीड़ इसलिए ज्यादा है क्योंकि जनसंख्या ज्यादा है।'' भाजपा के ही राष्ट्रीय नेता विनय सहस्त्रबुद्धे का कहना है कि ''लोग तो पहले कभी-कभी राशन की लाइन में भी मर जाते थे।'' मलतब यह कि उनके लिए लोगों का लाइन में खड़े-खड़े मर जाना कोई खास बात नहीं है। जनता के प्रति शासकों की बेदिली और नफरत अपनी सभी सीमाएँ लाँघ चुकी है।

बेबस-लाचार जनता के जख्मों पर नमक छिड़कते हुए प्रधानमंत्री मोदी ने कहा है कि पहली बार अमीर, गरीब के घर के आगे हाथ जोड़े खड़े हैं। यानी अमीर काला धन जमा कराने के लिए गरीब के खातों का इस्तेमाल कर रहे हैं। उनके भाषण के बाद ही सरकार का पूरा प्रचार-तंत्र इसी झूठ के प्रचार में जुट गया। उनके इस बयान ने देश के गरीबों को काला धन सफेद करनेवाले दलाल की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। अचानक सारा प्रचार तंत्र जन-धन खातों में अमीरों द्वारा पैसा जमा कराने के गीत गाने लगा। थोड़ा भी दिमाग पर जोर डालें तो इस बकवास को समझ सकते हैं कि सरकार की सीमा के हिसाब से 2000 रुपये प्रति व्यक्ति नोट बदलने में एक अमीर को अपने 1 करोड़ रुपये बदलवाने के लिए 5000 गरीबों को लाइन में लगवाना पड़ेगा। ऐसी कोई घटना कहीं दिखायी नहीं दी और न ही यह मुमकिन है। सरकार ने नोटबदली की सीमा 4000 से घटाकर 2000 करने और उँगली पर स्याही लगाने जैसे अपमानजनक फैसले को जनता द्वारा की जा रही दलाली को रोकनेवाले कदम के रूप में दिखाया।

जन-धन खातों में जमा रकम का आँकड़ा सरकार के इस घिनौने झूठ की कलई खोल देता है। नोटबन्दी के फैसले से 7 महीना पहले, अप्रैल 2016 में देश के कुल 21.81 करोड़ जन-धन खातों में कुल जमा रकम 37,617 करोड़ रुपये थी यानी औसतन लगभग 1,700 रुपये प्रति खाता। नोटबन्दी के 22 दिन बाद, 30 नवम्बर को 25.78 करोड़ जन-धन खातों में जमा रकम 74,321 करोड़ थी यानी औसतन 2,882 रुपये प्रति खाता। यानी अप्रैल से 30 नवम्बर तक के 7 महीनों में प्रति खाता गरीबों ने 1782 रुपये जमा किये। इसका अर्थ है कि सरकार की निगाह में 7 महीने में अपने खाते में 1782 रुपये, यानी हर महीना 20 रुपये डालनेवाले लोग देशद्रोही और अमीरों के दलाल हैं। कमाल की बात यह है कि यह वही सरकार है, जो असली काला धन वालों के लिए, आधा-आधा काला धन बाँट लेने का कानून बनाती है।

नोटबन्दी का एक-एक आदमी पर जो असर पड़ा है उससे कहीं ज्यादा गहरा और दूरगामी असर समाज के अलग-अलग पेशों से जुड़े लोगों पर पड़ा है। नोटबन्दी ने पहले से ही किसी तरह गुजारा कर रही असंगठित क्षेत्र की 83 फीसदी मेहनतकश जनता जैसे छोटे किसान, दिहाड़ी मजदूर, रेहड़ी-पटरी-खोमचा लगानेवाले, छोटे दुकानदार, रिक्शा चालक, जो अर्थव्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर खड़े हैं, उन्हें कंगाली की ओर धकेल दिया है।

देश की कुल आबादी का 65 फीसदी से ज्यादा हिस्सा देहात में रहता है। इस आबादी का भी बड़ा हिस्सा छोटी खेती और उससे जुड़े काम-धन्धों से अपनी रोजी-रोटी चलाता है। देहातों में बैंकों की शाखाएँ कुल शाखाओं की 34 फीसदी हैं। डाकखानों की भी कमोबेश यही स्थिति है। देहात की बैंक शाखाओं में आधा हिस्सा ग्रामीण बैंकों और उन सहकारी बैंकों का है, जिन्हें सरकार ने नोट-बदली का अधिकार नहीं दिया था। हालाँकि देहात की ज्यादातर बैंक शाखाएँ बड़े गाँवों और कस्बों में ही हैं, लेकिन अगर इस बँटवारे को एक समान भी मान लिया जाये, तो भी 13 गाँवों के हिस्से में एक बैंक आता है। इसके अलावा शहरों के बैंकों में नोट पहुँचाने को ही सरकार ने तरजीह दी है। इस जमीनी हकीकत से ही अन्दाज लग जाता है कि देहात में नोट बदलवाना कितना विकट काम बन गया होगा।

देहात के बहुत बड़े हिस्से--पर्वतीय और आदीवासी हिस्से में बैंकों की गाँवों से दूरी बहुत ज्यादा है। कहीं-कहीं यह 50 किमी तक है।

ऐसे इलाकों में लोग अपना सब काम-धन्धा छोड़कर कई-कई दिनों तक हाड़ कँपाती सर्दी में बैंकों के सामने लाइन लगाकर बैठे रहे। खरीफ की फसल (धान और दलहन) का एक हिस्सा मण्डी में पहुँच जाने, रबी की फसल की बुआई और शादियों का मौसम होने के चलते लोगों के घरों में साल के सामान्य दिनों से ज्यादा पुराने नोटे थे। इसने समस्या को और बढ़ा दिया।

8 नवम्बर को जब सरकार ने नोटबन्दी का फैसला किया तो खाद्यान्न पैदा करनेवाले अधिकांश किसानों में से कुछ की खरीफ की फसल मण्डी में जा चुकी थी और कुछ की जाने को तैयार थी। जिन किसानों की फसल बिक चुकी थी, उन्हें आड़तियों ने पुराने नोट थमा दिये और जिनकी फसल अभी नहीं बिकी थी, उनकी फसल खरीदने से मना कर दिया, क्योंकि किसानों को देने के लिए उनके पास नये नोट नहीं थे। दूसरी ओर, यह रबी (गेहूँ, सरसों) की बुआई का समय था, जबकि किसानों की जेब खाली कर दी गयी। छत्तीसगढ़ में दिसम्बर के पहले हफ्ते तक, 19 लाख हेक्टेयर रबी के रकबे में से आधे से भी कम, केवल 7.7 लाख हेक्टेयर में ही बुआई की जा सकी है। जिन लोगों ने बुआई कर ली, उनको किन मुसीबातें से गुजरना पड़ा होगा, यह समझना कठिन नहीं।

ऐसे मौसम में अगर किसान हफ्तों तक हाथ बाँधे बैंकों के आगे लाइन लगाकर खड़े रहेंगे, तो गले तक कर्ज में डूबे इन धरतीपुत्रों का अगला साल कैसे कटेगा, इसका अनुमान लगाने के लिए गाँवों को थोड़ा करीब से देखने की जरूरत है। नकदी फसल के रूप में धान उगानेवाले किसानों की संख्या भारत में सबसे ज्यादा है। ये सभी किसान इस मौसम में धान बेचकर अपना बैंकों और सूदखोरों से लिया गया कर्ज चुकाते हैं। बैंक से कर्ज लेनेवाले लगभग सभी किसान साल भर की समय सीमा पूरी होने से दो-चार दिन पहले ही कर्ज भरते हैं, क्योंकि साल से एक दिन भी ज्यादा हो जाने पर बैंक ब्याज दर को लगभग डेढ़ गुणा बढ़ाकर 14 फीसदी कर देते हैं। कर्ज जमा करने के बाद किसान तुरन्त नये सिरे से कर्ज ले लेते हैं। नोटबन्दी के चलते बहुत से किसानों का कर्ज जमा नहीं हो पाया, जिस पर उन्हें अब 14 फीसदी सालाना ब्याज देना पड़ेगा। दूसरी ओर रबी की फसल की बुआई के लिए निजी सूदखोरों से महँगी दर पर (60 फीसदी सालाना) कर्ज लेना पड़ा। नकदी की कमी के चलते कुछ इलाकों में सूदखोरों ने ब्याज दर 10 फीसदी महीने या 120 फीसदी सालाना तक बढ़ा दी। अधिकतर जानकार लोग 8 महीने में नकदी की स्थिति सामान्य होने की बात कह रहे हैं, इससे निश्चय ही किसानों को कर्ज अदायगी में देरी होगी और पहले ही कर्ज के बोझ से दबकर आत्महत्या कर रहे किसानों पर कर्ज का बोझ और भी बढ़ जायेगा।

पिछले दशकों में गाँवों में गरीब-अमीर के बीच की खाई तेजी से बढ़ी है। हर गाँव में थोड़े से परिवार तेजी से रईस हुए हैं। एक-दो सदस्यों को अच्छी नौकरी मिल जाने के चलते भी कुछ परिवारों में खुशहाली आयी है, लेकिन अधिकांश परिवार तेजी से कंगाली की ओर बढ़ रहे हैं। मुट्ठीभर रईसों का ही गाँव में आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक दबदबा है। अधिकतर छोटे किसान इन्हीं से कर्ज लेते हैं। इस वर्ग ने नोटबन्दी का स्वागत किया है, क्योंकि छोटे किसानों के उजड़ने से इनकी जमीनों का रकबा और बढ़ेगा। यही वर्ग किसानों को नोटबन्दी का विरोध करने से भी रोक रहा है। बैंक अधिकारियों से उठ-बैठ और अपने रसूख के चलते इन देहाती रईसों को नये नोट भी आसानी से मिल गये। सरकार के भौंपू मीडियाकर्मी भी इन्हीं की बातें सबकी बात कहकर देश भर में फैलाते हैं। गरीबों की ओर तो वे झाँकने भी नहीं जाते।

सामान्य हालात में मध्यप्रदेश की 257 कृषि-मण्डियों में रोजाना औसतन 12 लाख टन का कारोबार होता था। नोटबन्दी के बाद यह कारोबार सिमटकर 2 लाख टन रोजाना पर पहुँच गया है। इस प्रदेश की 82 मण्डियों में धान, सोयाबीन, उड़द, मूँग जैसी फसलों से लदी किसानों की ट्रालियाँ कई-कई दिनों तक खड़ी रहीं। खरीददार और माल दोनों मौजूद होने के बावजूद व्यापार नहीं हो रहा है, क्योंकि नकदी नहीं है।

होशियारपुर (पंजाब) की मण्डी में 8 नवम्बर से पहले आलू का थोक भाव 16-18 रुपये किलो था, जो अब गिरकर 5-6 रुपये किलो रह गया है। उत्तर प्रदेश के आलू बोनेवाले किसानों की हालत पंजाब से भी बुरी है। 15 अक्टूबर से 1 दिसम्बर के बीच के समय में बाजार में पुराने आलू के स्टॉक में कमी रहती है और नया आलू बाजार में नहीं आ पाता। इन दिनों में आलू के दाम में थोड़ी तेजी आती है। इसी का फायदा लेने के लिए किसान अपना आलू कोल्ड स्टोरों में जमा करके रखते हैं। इसके चलते किसान कुछ पैसे बचा लेते हैं और नयी आलू की फसल के लिए नकदी हाथ में आ जाती है। नोटबन्दी के पहले किसानों का आलू 15 रुपये किलो बिक रहा था। आज इसे कोई 5 रुपये किलो में भी नहीं पूछ रहा है। दूसरी ओर, कोल्ड स्टोरों के मालिक उनके ऊपर किराया जमा करने और आलू बाहर निकालने का दबाव बना रहे हैं। इटावा और अलीगढ़ में कोल्ड स्टोर मालिकों ने बहुत से किसानों का आलू निकालकर बाहर फेंक दिया है। इटावा में किसानों द्वारा बुग्गी में आलू भरकर गाँव में मुफ्त बाँट देने की खबरें आयी हैं।

मण्डियों में किसानों के साथ होने वाला व्यापार पूरी तरह नकदी में होता है। किसान भी अपनी जरूरत का सारा सामान नकदी में ही खरीदते हैं। लिहाजा मण्डी और बाजार दोनों सूने पड़े हैं। अब सरकार मण्डियों में इण्टरनेट के जरिये लेन-देन की बात कर रही है, लेकिन उसके लिए जरूरी ताम-झाम देश की कुल 7,500 मण्डियों में से एक-दो को छोड़कर कहीं नहीं है। 10 साल पहले पंजाब की मण्डियों को ई-कॉमर्स (इंटरनेट से व्यापार) से जोड़ा गया था, लेकिन यह प्रयोग पूरी तरह फेल रहा और आज भी किसान नकदी में ही लेन-देन करते हैं।

फल और सब्जी की देश की सबसे बड़ी मण्डी--दिल्ली की आजादपुर मण्डी में नोटबन्दी के चलते कारोबार 50 फीसदी तक घट गया है। कश्मीर और हिमाचल से आनेवाले सेब के ट्रकों की संख्या भी घटी है और जो ट्रक आते हैं उनमें से आधे भी खाली नहीं हो पाते। मण्डी व्यापारियों के संगठन के अध्यक्ष मेथराम कृपलानी का कहना है कि ''मण्डी में आनेवाली सब्जियाँ और फलों की मात्रा घटकर आधी रह गयी है, जिससे कीमतें 20 फीसदी तक गिर गयी हैं, क्योंकि माँग इससे भी कम है। इसकी स्पष्ट वजह नोटबन्दी है।'' इस मण्डी में 3000 से ज्यादा मजदूर अलग-अलग तरह के कामों में लगे हैं, जो अब काफी बड़ी तादाद में अपने गाँवों में लौट गये हैं।

इस हालात का करारा जवाब भी सरकार को मिल गया। 12 दिसम्बर के दिल्ली कृषि मण्डी समिति चुनाव में भाजपा का पूरी तरह सफाया हो गया।

असंगठित क्षेत्र के उद्यमों के लिए बने राष्ट्रीय आयोग ने सन 2011-12 की अपनी रिपोर्ट में बताया था कि देश में काम करने की उम्र

वाली कुल आबादी का 83 फीसदी हिस्सा असंगठित क्षेत्र में काम करता है। इस क्षेत्र में उत्पादन, बिक्री, सेवाक्षेत्र के वे उद्यम आते हैं जो एक या कई साझेदारों के मालिकाने में हैं और उनमें लगे कामगारों की संख्या 10 से कम है। किसान, दुकानदार, रेहड़ी-पटरी लगानेवाले, दिहाड़ी मजदूर आदि सभी असंगठित क्षेत्र के दायरे में हैं। अर्थव्यवस्था में इस क्षेत्र की हिस्सेदारी 45 फीसदी है। आबादी के इस हिस्से की जीविका पूरी तरह नकद लेन-देन पर चलती है।

नेशनल हॉकर फेडरेशन के जनरल सेक्रेटरी शक्तिमान घोष का कहना है कि ''फेरी लगाकर सामान बेचनेवालों पर नोटबन्दी का सबसे बुरा प्रभाव पड़ रहा है। पूरे देश में फेरी लगाकर सामान बेचनेवालों की संख्या लगभग 4 करोड़ है। हम ज्यादातर कुटीर और छोटे उद्योगों में बननेवाला सामान बेचते हैं। इस क्षेत्र का सालाना कारोबार 8 हजार करोड़ रुपये है। इस छोटे स्तर की अर्थव्यवस्था की बर्बादी निश्चय ही मुट्ठीभर बड़े व्यापारियों की आमदनी बढ़ायेगी। 8 नवम्बर से अब तक खुदरा कारोबार की बिक्री में एक तिहाई की गिरावट आ चुकी है और थोक बाजार की गिरावट तो 50 फीसदी है। यह तो सरासर अन्याय है। सरकार इतनी बड़ी आबादी को उजाड़कर थोड़े से बड़े व्यापारियों की राह आसान करना चाहती है।''

ऐसा नहीं है कि नोटबन्दी से जनता के इस हिस्से पर पड़नेवाले प्रभाव का सरकार को पता ही नहीं है। वित्तमंत्री अरुण जेटली ने स्वीकार किया है कि ''नकदी की कमी के चलते थोड़े दिनों के लिए माँग में गिरावट आयेगी।'' लेकिन करोड़ों की सम्पत्ति के मालिक वित्त मंत्री को यह एहसास नहीं है कि रोज कुआँ खोदकर रोज पानी पीनेवाले ये लोग 'कुछ दिनों' में अपने परिवार समेत भिखारियों की कतार में शामिल होने को मजबूर होंगे।

नोटबन्दी के फैसले के तुरन्द बाद अन्तरराष्ट्रीय सलाहकार संस्था डिलोप्ट ने रिपोर्ट दी है कि 500 व 1000 के नोट बन्द करने से भारत के बाजार में नकदी संकट आयेगा, जिससे रेहड़ीवाले, खोमचेवाले, ड्राइवर, किराना दुकान जैसे छोटे पेशे के लोगों की आय घटेगी। बाजार से नकदी खींच लेने से असंगठित क्षेत्र के उत्पादन और व्यापार पर बुरा असर पड़ेगा और सकल घरेलू उत्पाद घटेगा। पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह भी इस फैसले से देश की आर्थिक वृद्धि दर में 2 फीसदी तक की कमी के बारे में संसद को बता चुके हैं। रिजर्व बैंक भी इस साल की वृद्धि दर में गिरावट का पूर्वानुमान अपनी रिपोर्ट में बता चुका है।

भाजपा के मजबूत समर्थक माने जानेवाले थोक व्यापारी--जो असंगठित क्षेत्र का खाता-पीता हिस्सा हैं, उन्होंने भी अब सरकार के नोटबन्दी के फैसले के खिलाफ खुलकर बोलना शुरू कर दिया है। व्यापारियों की संस्था कन्फेड्रेशन ऑफ इण्डिया ट्रेडर्स ने कहा है कि ''नोटबन्दी के बाद बाजारों में व्यापार 25 फीसदी घट गया है। ग्राम पंचायतों और कस्बों से माल खरीद के लिए जिला स्तर के शहरों में आनेवाले खुदरा विक्रेता नकदी की कमी के चलते अपने घरों में बैठे हैं। नये नोट न मिलने से किसान अपनी फसल नहीं बेच पाये, जिसके चलते देश की कृषि उत्पाद मण्डियों और दूसरी मण्डियों का व्यापार घट गया। नतीजतन गाँवों और कस्बों के खुदरा विक्रेताओं की बिक्री भी घट गयी। माल ढुलाई का काम भी ठप्प पड़ गया, क्योंकि ट्रक ड्राइवरों के पास भी बड़े नोट हैं जिससे सामान्य परिवहन में बाधा आयेगी।''

इण्डियन फाउण्डेशन ऑफ ट्रान्सपोर्ट रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग के प्रमुख एस पी सिंह का कहना है कि सड़क ट्रान्सपोर्ट इण्डस्ट्री को रोजाना 4,500 करोड़ का नुकसान हो रहा है। नोटबन्दी का सबसे बुरा प्रभाव सड़क ट्रान्सपोर्ट पर ही पड़ा है। ट्रान्सपोर्ट कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया के अनुसार कारोबार में 30 से 50 फीसदी तक की कमी आयी है। कृषि और सम्बन्धित वस्तुओं की ढुलाई भी 50 फीसदी तक घट गयी है।

इण्डियन इण्डस्ट्रीज एसोसिएशन के अध्यक्ष मनीष गोयल का कहना है कि नकदी की कमी के चलते उन उद्योगों का दम ही निकल गया है, जहाँ नकद भुगतान से ही काम होता है। ऐसे उद्योग जिनका माल गाँव-देहात में बिकता है, वहाँ उत्पादन लगभग ठप्प हो गया है। ये उद्योग अब चाय, मसाला, साबुन जैसे दैनिक उपयोग का सामान भी नहीं बना रहे हैं। धान न मिल पाने के चलते राइस मिलें बन्द हो रही हैं। केवल उत्तर प्रदेश में ही लघु उद्योगों के उत्पादन में 60 से 90 फीसदी की गिरावट आयी है। कानपुर का टेनरी (चमड़ा साफ करना) उद्योग लगभग बन्दी के कगार पर है। मजदूर टेनरी मालिकों के घरों के आगे बैठे अपने बकाया वेतन की माँग कर रहे हैं। प्रदेश के कई दूसरे उद्योगों ने भी 30 दिसम्बर तक 'ले ऑफ' की घोषणा करके मजदूरों को 31 दिसम्बर के बाद आने के लिए कहा है।

गाजियाबाद इण्डस्ट्रीज फेडरेशन के अध्यक्ष अरुण शर्मा का कहना है कि नोटबन्दी के बाद से उद्योगों में 50 फीसदी की गिरावट आयी है। सप्ताह में केवल 24 हजार रुपये निकलते हैं, इससे घर का खर्च चलायें या उद्योग। जनपद में 8 हजार से अधिक उद्योग हैं और इनमें 6 लाख लोग रोजगार पाते हैं। नोट की कमी से इन सबके सामने रोजी-रोटी का संकट खड़ा हो गया है। यह संकट केवल गाजियाबाद के उद्योगों पर ही नहीं, बल्कि प्रदेश के सभी 5 लाख 80 हजार उद्योगों पर है जिनमें लगभग 22 लाख लोग रोजगार पाते हैं। इसी एक फैसले से इन सबकी रोजी-रोटी उजड़ जायेगी।

अरोड़ा कैमिकल्स के निदेशक कैलाश अरोड़ा बताते हैं कि नोटबन्दी की सर्वाधिक मार ठेके के मजदूरों और दिहाड़ी मजदूरों पर पड़ी है। सबसे पहले उन्हीं की छँटनी हुई है। रोजगार छिनने के कारण मजदूर दूर-दराज के अपने घरों को लौट गये हैं, क्योंकि शहरों में बिना पैसे के एक दिन भी जीना सम्भव नहीं। घर लौट गये मजदूर पता नहीं वापस काम पर आयेंगे भी या नहीं।

कश्मीर से कन्याकुमारी तक नोटबन्दी से हुई तबाही के किस्से अन्तहीन हैं। समाज में जो जितने निचले पायदान पर जीवन जी रहा है, उस पर उतनी ही कड़ी चोट हुई है। यह सीधे-सीधे जनता का कंगालीकरण है।

क्या अमीर रो रहे हैं?

नोटबन्दी का दूसरा चमकदार पहलू भी है। बड़े पूँजीपतियों के रूप में देश का एक हिस्सा ऐसा भी है जो आज खुशी में दिवाली मना रहा है। कॉरपोरेट जगत (बड़े पूँजीपति) ने प्रधानमंत्री को इस साहसी कदम के लिए धन्यवाद दिया है। और कहा है कि उनका यह फैसला भारत में सुधारों के एक नये दौर की शुरूआत करेगा।

बड़े उद्योगपतियों की संस्था कन्फेड्रेशन ऑफ इण्डियन इण्डस्ट्री (सीआईआई) ने नोटबन्दी का स्वागत करते हुए इसे 'मास्टरस्ट्रोक'

बताया है। इस संस्था के निदेशक चन्द्रजीत बनर्जी का कहना है कि लेन-देन में नकदी का कम इस्तेमाल मुद्रास्फीती के बढ़ने की दर को धीमा करेगा जिससे आगे चलकर भारत के बड़े उद्योगों को फायदा होगा।

आईसीआईसीआई बैंक की चेयरमैन चन्दा कोचर का कहना है कि ''मैं सरकार के नोटबन्दी के फैसले का स्वागत करती हूँ। यह काले धन की समान्तर अर्थव्यवस्था पर भारी हमला है।''

नोटबन्दी ने इण्टरनेट के जरिये लेन-देन को अचानक बढ़ा दिया है। इस क्षेत्र में लगी कम्पनियों को भारी मुनाफा हो रहा है। ऐसी ही एक कम्पनी 'स्नैपडील' के सीईओ कुनाल बहल का कहना है कि हम सरकार के इस साहसी कदम की तारीफ करते हैं, जो लम्बी अवधि में भारत की अर्थव्यवस्था को मजबूत करेगा।

अर्थव्यवस्था की पेंदी में जिन्दगी जी रहे करोड़ों लोगों और शीर्ष पर बैठे मुट्ठीभर धनाढ्यों के बयानों का विरोधाभास दिखा देता है कि नोटबन्दी का फैसला किसे उजाड़ने और किसकी मौज करने के लिए किया गया है। इस फैसले को पूरे देश के लिए लाभकारी और खुशी देनेवाला कहनेवाले प्रचारक देश की 90 फीसदी आबादी से मुँह मोड़कर बड़े पूँजीपतियों की चाटुकारी करने और जनता के बीच भ्रम फैलने के काम में लगे हैं।

आदमी की खुशी या दुख ऐसी चीज नहीं है कि किसी जादू से पैदा की जा सके। आमतौर पर कोई चीज या घटना मन को अच्छी लगती है या उससे कोई हित पूरा होता है तो आदमी खुश होता है और इसके ठीक उलटी चीजों से वह दुखी होता है। आज, जब देश की अधिकांश आबादी लाइन में लगी है, पैसे की कमी के चलते लोगों के बच्चे मरने, लोगों द्वारा आत्महत्या करने, लोगों के रोजी-रोजगार उजड़ने की घटनाएँ हमारे चारों ओर घट रही हैं, तो भला कोई सामान्य इनसान खुश कैसे हो सकता है। हाँ, अगर बार-बार एक ही बात दुहराकर और दबाव बनाकर उसके मन में यह बिठा दिया जाये कि उसके अलावा सभी खुश हैं तो शायद वह भी कह दे कि मैं खुश हूँ। सरकार के प्रचारक और उसका समर्थक मीडिया ऐसा ही माहौल बना रहा है।

नोटबन्दी के फैसले के तुरन्त बाद से ही प्रचार की आँधी के जरिये यह साबित करने की कोशिश की जा रही है कि सारी जनता सरकार के फैसले के साथ खड़ी है। लोकसभा चुनाव से पहले मोदी के पक्ष में प्रचार से ऐसा लगता था कि जैसे सारा देश मोदी के पीछे जा रहा हो। उस समय उन्हें कुल बालिग मतों का केवल 18 फीसदी मत ही हासिल हुआ था। यानी 82 फीसदी मतदाता उन्हें उस समय भी पसन्द नहीं करते थे। सामान्य रूप से देखने पर लगता है, आज मोदी की लोकप्रियता चुनाव से पहले जितनी नहीं है। फिर मुट्ठीभर लोगों के पक्ष में होने से भला यह कैसे कहा जा सकता है कि सब सरकार के फैसले के साथ खड़े हैं।

नोटबन्दी से लाभ के दावे कितने सच, कितने झूठ

8 नवम्बर की रात अपने नाटकीय भाषण में मोदी ने नोटबन्दी के तीन फायदे गिनवाये थे। पहला, इससे काला धन खत्म हो जायेगा। दूसरा, इससे अर्थव्यवस्था में मौजूद जाली नोट खत्म हो जायेंगे। तीसरा, इससे आतंकवाद पर लगाम लगेगी।

सरकार के इन तीनों दावों की कलई खुल गयी, तो इन दावों को पृष्ठभूमि में धकेलकर सरकार अब अचानक एक नये दावे--नकदीविहीन अर्थव्यवस्था बनाने की बात करने लगी है। हम इस दावे की हकीकत को भी जाँचने की कोशिश करेंगे।

रिजर्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत की कुल अर्थव्यवस्था का 26 फीसदी काला धन है। इस धन का केवल 4 फीसदी ही नोटों के रूप में है। इसका कारण यह है कि काली कमाई को तकियों या गद्दों में छिपाकर रखने का जमाना बीत चुका है। अपवाद के रूप में कुछ समय के लिए ही काला धन नगदी के रूप में रखा जाता है। अब इसे विदेशी बैंकों में, विदेशी मुद्रा के रूप में या सम्पत्ति, सोना या शेयरों के रूप में निवेश करके लगातार बढ़ाया जाता है। नोटबन्दी के फैसले का नकदी के रूप में मौजूद काले धन के केवल 4 फीसदी पर ही थोड़ा-बहुत असर पड़ेगा। यानी यह 96 फीसदी काले धन को कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचायेगा।

2014 के लोकसभा चुनावों में जब भाजपा ने इसे सबसे बड़ा मुद्दा बताया तो जनता भी इससे प्रभावित हुई। चुनावी रैलियों में मोदी ने बढ़-चढ़कर बातें की। लेकिन सरकार बनने के बाद जब लोगों ने सरकार को उसके वादों की याद दिलायी तो भाजपा अध्यक्ष अमित शाह ने उन्हें चुनावी जुमला बता दिया। काला धन पर सरकार पलटा खा गयी। काँग्रेस के शासन काल में ही स्विस बैंक ने सरकार को 268 भारतीय खाता धारकों की जो सूची सौंपी थी और सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय में जिस सूची की बात स्वीकारी भी थी, सर्वोच्च न्यायालय के बार-बार कहने के बावजूद भी सरकार ने उस पर कोई कार्रवाई नहीं की। उलटे सरकार ने इन नामों को सबके सामने लाने से भी मना कर दिया। जब सरकार पर ज्यादा दबाव पड़ा तो उसने एक जाँच दल गठित करके अपना पिंड छुड़ा लिया। इस जाँच दल का गठन हुए लगभग 2 साल बीत चुके हैं, लेकिन अब तक किसी भी खाता धारक का न तो नाम सामने आया है और न ही किसी के खिलाफ कोई कार्रवाई हुई है।

सजा तो दूर की बात है, काला धन रखनेवालों को अपना धन सफेद करने का मौका देते हुए पिछले दिनों सरकार ने एक योजना चलायी थी, जिसमें कोई भी सरकार को 40 फीसदी टैक्स देकर अपनी कमाई को सफेद कर सकता था। इस योजना के तहत सरकार ने वादा किया था कि 40 फीसदी टैक्स जमा करानेवाले किसी भी आदमी से वह कमाई का जरिया नहीं पूछेगी। यह सरकार की ओर से नशीले पदार्थों की तस्करी करनेवालों सहित हर तरह के जघन्य अपराध से धन बटोरनेवालों के लिए सरकार की क्षमादान योजना थी। अगर सरकार को अगले ही महीनों में नोटबन्दी करनी थी तो सरकार ने इन लोगों को बचने का रास्ता क्यों दिया?

नोटबन्दी की घोषणा के वक्त सरकार ने अघोषित आय पर 200 फीसदी जुर्माना लगाने की बन्दर घुड़की दी, लेकिन दो हफ्ते के भीतर ही सरकार ने उन काला धन वालों से आधा-साझा करने की पेशकश की। यानी काला धन से लड़ते हैं, मगर हाथ में भाला नहीं, फूलों की माला लेकर।

तथ्य बताते हैं कि काले धन का जो छोटा-सा नगद हिस्सा था, उससे नोटबन्दी के पहले हफ्ते में ही सोने में भरपूर खरीदारी हुई। 8 नवम्बर की रात सोने का भाव 30 हजार प्रति तोला से बढ़कर 50 हजार रुपये प्रति तोला यूँ ही नहीं चढ़ गया। नोटबन्दी के बाद के पहले हफ्ते में ही 300 कुन्तल सोने का आयात किया गया। सामान्य परिस्थितियों में एक महीने में भी इतने सोने का आयात नहीं होता है। क्या यह सब सरकार की आँखों पर पट्टी बाँधकर या तमंचा दिखाकर किया गया होगा?

और तो और, सोने के आभूषण विक्रेताओं को सरकार ने 2 लाख तक की खरीदारी पर ग्राहक से कोई प्रमाण-पत्र न माँगने की छूट दे रखी है। कोई भी पुरानी तारीख में कई-कई बिल बनवाकर आसानी से अपनी काली कमाई को सोने में बदलवा सकता है। सरकार ने 8 नवम्बर से ही सोने के आयात पर रोक क्यों नहीं लगा दी?

8 नवम्बर के बाद अचानक डॉलर और पाउंड की तुलना में रुपये की कीमत गिर गयी। वित्त मंत्रालय की पूर्व आर्थिक सलाहकार इला पटनायक ने कहा है कि ''डॉलर और पाउंड की माँग में आये उछाल से स्पष्ट है कि धन का प्रवाह उलटी दिशा में हो रहा है।'' बन्द किये गये नोटों को डॉलर और पाउंड से बदलकर कुछ विदेशी बैंकों में आरटीजीएस के जरिये जमा कराया गया। इस दौरान हवाला कारोबार में उछाल आया और कमीशन एजेण्टों ने कमीशन को 300 से 600 फीसदी तक बढ़ा दिया। सरकार ने इन गन्दे दृश्यों को देखना उचित नहीं समझा।

सच तो यह है कि सरकार खुद भी विदेशों में पैसा पहुँचाने के साधन मुहैया कराती है। अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्ववाली भाजपा सरकार ने 4 फरवरी, 2004 को टैक्स में छूट के साथ 25 हजार डॉलर विदेश ले जाने या भिजवाने को कानूनी जामा पहनाया था। काँग्रेस के शासन काल में यह सीमा बढ़कर 75 हजार डॉलर तक पहुँच गयी। मोदी सरकार ने 2015-16 में इस छूट को एक ही झटके में दस गुणा बढ़ाकर 2.5 लाख डॉलर कर दिया। रिजर्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार इस साल मार्च से सितम्बर तक 31.280 करोड़ रुपये कर छूट के लाभ के साथ विदेश भिजवाये गये।

पाठक इस पर गौर करें कि उनके जानकार में भी कोई है, जिसने इस छूट का लाभ उठाया हो।

कम मात्रा में काला धन रखनेवाला छुटभैया कोशिश करता तो परिवहन विभाग, डाकघर, बैंक, रेलवे के अधिकारियों से साठगाँठ करके या पैट्रोल पम्प मालिकों को थोड़ा कमीशन देकर अपनी काली कमाई को सफेद कर सकता था। अधिकतम 30 रुपये के टिकट वाली दिल्ली परिवहन निगम ने नोटबन्दी के बाद अपना सारा कैश 1000 व 500 के नोटों के रूप में जमा कराया है। इस रास्ते से काला धन को सफेद करने के तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। काला धन रखनेवालों को सरकार द्वारा दी गयी यह सुविधा क्षैतिज मानी जायेगी, जिसका लाभ निचले तबके के काला धन वालों को मिला।

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि 500 व 1000 के नोटों को बन्द करके काले धन को खत्म करने के सरकारी दावे कितना हकीकत और कितना फसाना हैं। अपने फैसले में उसने 96 फीसदी काले धन को छुआ भी नहीं और बाकी के 4 फीसदी के लिए बचने के बहुत से सरकारी चोर दरवाजे खुले छोड़ दिये। और अब छोटी- छोटी मछलियों को फाँसकर वह सुर्खरु होना चाहती है। लेकिन इसका उलटा असर हो रहा है। अब लोग सवाल उठा रहे हैं कि अगर सरकार को छापा मारकर ही काला धन निकालना था तो उसने यह काम पहले क्यों नहीं किया। जनता को मुसीबत में क्यों डाला। दरअसल सरकार काले धन पर हमला करने के बजाय साँप की बाँबी के बाहर लट्ठ पटक रही है।

एक रिपोर्ट के मुताबिक तमाम राजनीतिक पार्टियों के पार्टी फण्ड में जो बेनामी धन जमा होता है, पिछले सालों उसका 93 फीसदी अकेले भाजपा के पास आया है। क्या ऐसी पार्टी की सरकार से काले धन को खत्म करने की उम्मीद की जा सकती है। मजेदार बात यह कि काला धन पर गाल बजानेवाली सभी पार्टियों (वामपंथी पार्टियों को छोड़कर) ने पार्टी को मिले चन्दे के स्रोतों का खुलासा करने से इनकार कर दिया।

सरकार का एक दावा यह भी है कि नोटबन्दी से देश में चल रहे जाली नोट खत्म हो जायेंगे। सरकार का ही तथ्य है कि नकली नोटों का मूल्य कुल नोटों का 0.026 फीसदी या 400 करोड़ है। सरकार के तथ्य यह भी बता रहे हैं कि पुराने नोटों को ठिकाने लगाने और उतने ही नये नोट छपवाने पर लगभग 20 हजार करोड़ का खर्च आयेगा। हालाँकि यह आँकड़ा अभी और भी बढ़ता जा रहा है।

सच्चाई यह है कि दुनिया की कोई भी मुद्रा ऐसी नहीं है, जिसकी जाली मुद्रा न छापी जाती हो। दुनिया के सबसे ताकतवर देश की मुद्रा--डॉलर के जाली नोट भी दुनिया में सबसे ज्यादा हैं। सरकार ने जो 500 व 2000 के नये नोट चलाये हैं उनके भी जाली नोट बाजार में आ चुके हैं, इन नोटों के साथ अपराधियों की गिरफ्तारी भी हो चुकी है। खुद भाजपा की पंजाब शाखा से जुड़ा नौजवान अभिनव शर्मा, जिसको सरकार ने 'मेक इन इण्डिया' योजना के तहत युवा उद्यमी का पुरस्कार भी दिया है और जिसने इस योजना के प्रचार में भरपूर भूमिका निभायी, दो करोड़ के जाली नये नोटों के साथ पंजाब पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया जा चुका है। पंजाब पुलिस ने उसके घर से जाली नोट छापने की मशीन भी बरामद की है। सरकार ने भी आज तक ऐसी कोई गारण्टी नहीं की है कि बाजार में आये नये नोटों के जाली नोट नहीं छपेंगे।

नोट छपाई का धन्धा काफी तिलिस्मी है। दुनिया में नोट छपाई के कारोबार पर केवल आधा दर्जन कम्पनियों का कब्जा है। इनमें स्वीट्जरलैण्ड की डी लारू जियरो, जापान की कुमोरी प्रिंटिंग प्रेस, स्वीडन की क्रैन और फ्रांस की आर जो विंगीस प्रमुख हैं। ये कम्पनियाँ ही दुनिया के अधिकतर देशों को नोट में इस्तेमाल होनेवाली स्याही, कागज, धागा और प्रिंटिंग ब्लॉक की आपूर्ति करती हैं। अकेली डी लारू जियरो का ही दुनिया के 150 देशों में कारोबार है। इसमें भूलवश और जानबूझकर एक देश के नोट की गोपनीयता दूसरे देश तक पहुँच जाने की सम्भावना रहती है। भाजपा नेता सुब्रामण्यम स्वामी ने पिछले दिनों पूर्व वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम को जेल भिजवाने की धमकी दी थी, क्योंकि उन्होंने उस कम्पनी को नोट के कागज की आपूर्ति का ठेका दिया था जो पाकिस्तान को नोट की आपूर्ति करती है।

2009 में सीबीआई ने भारत-नेपाल सीमा पर सरकारी बैंकों की कई शाखाओं पर छापे मारकर जाली नोट बरामद किये थे। इन बैंकों ने बताया कि ये नोट रिजर्व बैंक से आये कैश के बक्सों में ही आये थे। इनमें से काफी नोट बाजार में भी जा चुके थे। अपनी सफाई में बैंक

कर्मियों का कहना था कि हम खासतौर से ग्राहकों से आये नोटों की ही जाँच करते हैं। रिजर्व बैंक से थोक में आये नोटों को जाँचना व्यवहारिक नहीं है। बाद में, रिजर्व बैंक में भी नकली नोट पाये गये। छानबीन के बाद पता चला कि यह सब नोट छपाई की प्रेस में गड़बड़ी के चलते हुआ।

नोट छापनेवाली प्रेसों में समय-समय पर गड़बड़ी की खबरें आती रहती हैं। होशंगाबाद की प्रिंटिंग प्रेस में 2010 में नोटों में मैग्नेटिक धागे पर अरेबिक शब्द पाये गये थे। जाँच से पता चला कि गलती से भारत में वह धागा भेज दिया गया था, जो अरब जाना था। अभी 500 के 2 करोड़ नये नोट (1000 करोड़ रुपये) देवास व नासिक की प्रेस से नकली छप जाने की खबरें आयी हैं।

सरकार ने दावा किया था कि नोटबन्दी से सीमापार से होनेवाले आतंकवाद की कमर टूट जायेगी। सभी जानते हैं कि देश की सुरक्षा व्यवस्था की जिम्मेदारी रिजर्व बैंक की मुद्रा नीति नहीं, सरकार की सुरक्षा नीति निभाती है। तलवार चाहे कितनी भी अच्छी हो लेकिन बटन लगाने के काम नहीं आ सकती, क्योंकि वह काम सूई का है। दुनिया में आज तक ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जब किसी सरकार ने आतंकवाद से निपटने के लिए नोटबन्दी की हो। अमरीका दसियों साल तक अफगानिस्तान और इराक में फँसा रहा, लेकिन उसने तालिबान की कमर तोड़ने के लिए वहाँ कभी नोटबन्दी नहीं करायी। अगर नोटबन्दी इतना ही कारगर हथियार है तो 8 नवम्बर के बाद लगातार आतंकवादी हमले क्यों हो रहे हैं और आतंकवादियों के पास से नये नोट कैसे बरामद हो रहे हैं?

देश के रक्षामन्त्री मनोहर पारिकर ने खुशफहम बयान दिया था कि ''नोटबन्दी से कश्मीर में पत्थरबाजी रुक गयी है।'' उनका यह बयान सरासर झूठ था, क्योंकि कश्मीर में पत्थरबाजी नोटबन्दी के पहले ही बन्द हो गयी थी। लेकिन हम उनके तर्क गम्भीरता से लें तो यह पूछा जा सकता है कि अगर नोटबन्दी से कश्मीर में शान्ति स्थापित हो गयी और आतंकवाद की कमर टूट ही चुकी है तो सरकार वहाँ फौज की संख्या में कटौती क्यों नहीं करती? अगर नोटबन्दी का तरीका पत्थरबाजी रोकने में इतना कारगर था और बकौल प्रधानमंत्री, सरकार नोटबन्दी पर छः महीने से विचार कर रही थी, तो कश्मीर में सुरक्षाकर्मी सहित सैकड़ों लोगों के मरने और पैलेट गन से 5000 से ज्यादा लोगों के अन्धे होने का इन्तजार क्यों किया गया, फैसले को चार महीने पहले ही लागू क्यों नहीं किया गया? कश्मीर में 9 दिसम्बर को पत्थरबाजी फिर से अनन्तनाग में शुरू हो गयी है, क्या सरकार अब इन नये नोटों को बन्द करके फिर से दूसरी तरह के नोट लायेगी? दरअसल ये सारे खोखले सरकारी तर्क जनता को गुमराह करने के हथकंडे हैं।

क्या भारत की अर्थव्यवस्था को कैश-लेस बनाया जा सकता है

कमाल की बात यह है कि सरकार अब नोटबन्दी से होनेवाले इन फायदों के दावों पर पर्दा डालकर एक नया धमाका कर चुकी है। अब वह अर्थव्यवस्था को नकदी-मुक्त (कैश-लेस) अर्थव्यवस्था बनाने का राग अलापने लगी है और इससे भ्रष्टाचार के जड़ से खत्म हो जाने का दावा कर रही है। सवाल यह है कि इस फैसले को लागू करने के लिए क्या देश की जमीनी हालात तैयार हैं? और जिन देशों की अर्थव्यवस्था पहले ही नकदी-मुक्त हो चुकी है, क्या उन देशों से भ्रष्टाचार खत्म हो गया? सबसे जरूरी यह देखना है कि इस फैसले का देश की जनता पर क्या असर पड़ेगा? हम इन तीनों की जाँच-पड़ताल करने की कोशिश करेंगे।

सभी देश अपनी अर्थव्यवस्था की खूबियों और खामियों को ध्यान में रखकर अपनी मुद्रा नीति बनाते हैं। अगर मुद्रा नीति देश की अर्थव्यवस्था के अनुरूप नहीं होगी तो जल्दी ही अर्थव्यवस्था का भट्ठा बैठ जायेगा। जब से भारत की सरकारों ने डंकल प्रस्ताव को स्वीकार किया है तभी से, चाहे किसी भी पार्टी की सरकार रही हो, उन्होंने अमरीका की पिट्ठू संस्थाओं विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष की नीतियों के अनुसार देश की अर्थव्यवस्था में बदलाव किये हैं। भले ही ये बदलाव देश की अधिकांश जनता के लिए मुसीबत और मुट्ठीभर धनी लोगों के लिए अकूत दौलत पैदा करने वाले रहे हों। मौजूदा सरकार भी अपने से पहली सरकारों की तरह विश्व बैंक के आदेशों के अनुसार अपनी अर्थव्यवस्था के बारे में फैसले ले रही है, लेकिन फर्क यह है कि मोदी सरकार बेहद तेजी से, आँख मूँदकर और देश की जनता की जान की कीमत पर भी इन नीतियों को लागू करने पर आमादा है। इसके लिए वह ढोंग-पाखण्ड, छल-प्रपंच, तानाशाही, धर्मान्धता जनता के बीच फूट डालने जैसे तमाम हथकण्डे अपना रही है।

भारत के कुल नोटों का मूल्य उसके सकल घरेलू उत्पाद के मूल्य का लगभग 14 फीसदी है। विश्व बैंक का दबाव है कि भारत सरकार अपने नोटों की संख्या घटाकर उनका मूल्य सकल घरेलू उत्पाद के 4 फीसदी से नीचे ले आये। भारत के बड़े पूँजीपति भी यही चाहते हैं, ताकि छोटे स्तर का उत्पादन (छोटी खेती सहित) और छोटे स्तर का व्यापार उजड़ जाये और देश-दुनिया की बड़ी-बड़ी कम्पनियों का बाजार फैलने का रास्ता साफ हो जाये। जिस देश की 70 फीसदी आबादी केवल 20 रुपये रोज कमाकर भूखों मरती हो, उस देश का मुखिया अगर मुट्ठीभर देशी-विदेशी धन्नासेठों को फायदा पहुँचाने के लिए इस कंगाल जनता को इण्टरनेट के जरिये लेन-देन के सब्जबाग दिखा रहा है तो ऐसे मुखिया की तारीफ और उपमा देने के लिए शब्द ढूँढ़ना मुश्किल है। क्या यह महज इत्तेफाक है कि देश को इण्टरनेट से चलाने की प्रधानमंत्री की घोषणा से ठीक पहले देश का सबसे बड़ा पूँजीपति पूरे देश में अपनी कम्पनी के मुफ्त इण्टरनेट वाले सिम (जियो के सिम) बाँट रहा है? क्या यह इत्तेफाक है कि नोटबन्दी की घोषणा के अगले दिन पेटीएम कम्पनी देशभर में प्रधानमंत्री के फोटो के साथ विज्ञापन देती है? यूरोप व अमरीका के जिन देशों में नकदी-विहीन लेन-देन की व्यवस्था है वहाँ की अर्थव्यवस्था, तकनीक, लोगों के जीवन स्तर और आमदनी के मामले में भारत उनके सामने कहीं नहीं ठहरता। विश्व बैंक और बड़े पूँजीपतियों के दबाव में सरकार द्वारा लिया गया यह फैसला कहीं देश के लिए वैसा ही न बन जाये जैसा कहते हैं कि कौवा चला हंस की चाल, अपनी भी खो बैठा।

अगर कुछ देर के लिए जनता की हालत से मुँह भी फेर लें तो क्या प्लास्टिक के कार्डों, मोबाइल फोन और इण्टरनेट के जरिये लेन-देन करने के लिए जरूरी ताम-झाम देश में उपलब्ध है?

विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत में अलग-अलग तरह के बैंकों की केवल 1,38,625 शाखाएँ हैं। शहरों में भले ही 37 फीसदी आबादी हो, लेकिन यहाँ गाँवों के मुकाबले शाखाओं की संख्या दुगनी है। इनमें से 91,182 शाखाएँ शहरों में और 47,443 देहात में हैं, इनमें से भी अधिकतर शाखाएँ कस्बों और बड़े गाँवों में हैं। जबकि देश की 63 फीसदी आबादी गाँवों में बसती है। अगर देहात में बैंकों का समान बँटवारा भी मानें तो भी 1 लाख लोगों पर केवल 8 बैंक शाखाएँ हैं। इसी तरह देश में कुल एटीएम की संख्या 2,15,000 है, जिनमें से 55,690 केवल 7 महानगरों में हैं। कुल एटीएम का 90 फीसदी केवल 16 बड़े राज्यों में है। बाकी के राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों में केवल 10 फीसदी एटीएम हैं। पूर्वोत्तर के 7 राज्यों में एटीएम नहीं के बराबर--5,199 हैं, इनमें से भी अकेले असम में 3,645 हैं और बाकी के छः राज्यों में केवल 1,554 एटीएम हैं। पहाड़ी व आदिवासी क्षेत्रों में बैंकों और एटीएम की कमी इस हद तक है कि मुख्य भूमि के लोग कल्पना भी नहीं कर सकते।

बिना नकदी के लेन-देन के लिए दूसरी जरूरत है प्लास्टिक के कार्डों--डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड की। यही रिपोर्ट बताती है कि सन् 2014 में भारत के 15 साल की उम्र से ज्यादा के केवल 11 फीसदी लोगों ने भुगतान के लिए डेबिट कार्ड का और 3.4 फीसदी ने क्रेडिट कार्ड का इस्तेमाल किया। केवल 2.2 फीसदी लोग ही लेन-देन के लिए फोन का इस्तेमाल करते हैं। डेबिट कार्ड रखनेवाले इससे केवल 245.14 रुपये प्रति व्यक्ति महावार भुगतान करते हैं जबकि क्रेडिट कार्ड वाले 9,382 रुपये प्रति व्यक्ति महावार का भुगतान करते हैं। फोन के जरिये बिल आदि का भुगतान करनेवाले कुल आबादी के केवल 0.2 फीसदी हैं।

बिना नकदी के लेन-देन की तीसरी जरूरत है पूरे देश में बिजली और इण्टरनेट की मौजूदगी। भारत के 1 लाख से ज्यादा गाँव अब तक ऐसे हैं जहाँ बिजली नहीं है। देश के आधे भी गाँवों में अब तक मोबाइल के टावर नहीं लगे हैं। इण्टरनेट की उपलब्धता तो अब तक पूरी तरह चारों महानगरों में भी नहीं है। पूरे भारत में अभी इण्टरनेट का सपना भी नहीं देखा जा सकता।

ऊपर की तमाम जरूरतों से भी बड़ी जरूरत है पढ़ी-लिखी जनता की। देहात की दो तिहाई और शहरों की आधे से ज्यादा जनता आठवीं पास भी नहीं है। क्या आबादी के इस विशाल हिस्से से यह उम्मीद की जा सकती है कि वे स्मार्टफोन चलाकर अंग्रेजी भाषा में इण्टरनेट के जरिये लेन-देन कर लेंगे?

आज अधिकांश लोग इस तथ्य से वाकिफ हैं कि भारत की अधिकांश आबादी किसी तरह अधपेट खाकर जिन्दा है। बिना नकदी के लेन-देन के लिए आवश्यक स्मार्टफोन घर के हर बालिग सदस्य को देना इनकी महीनों की कमाई से ज्यादा बैठेगा। अर्थव्यवस्था के असंगठित क्षेत्र से अपनी जीविका कमानेवाली देश की इस 83 फीसदी आबादी का बड़ा हिस्सा स्मार्टफोन व इण्टरनेट का खर्च वहन ही नहीं कर सकता।

भारत के बाजार का 90 फीसदी से ज्यादा हिस्सा नकद लेन-देन में चलता है। हम अपने जीवन के रोजमर्रा के अनुभव से देख सकते हैं कितने परचून की दुकानवालों, रेहड़ी लगाकर सामान बेचनेवालों, फेरीवालों, पटरीवालों, जूता गाँठनेवालों, बाल काटनेवालों, साइकिल व स्कूटर की मरम्मत करनेवालों, झाड़ू-पोंछा करनेवालों, रिक्शा व ऑटोवालों, खेत में मजदूरी करनेवालों--सूची बेहद लम्बी है--से हम स्मार्ट फोन, डेबिट, क्रेडिट कार्ड या इण्टरनेट के जरिये भुगतान कर सकते हैं। देश के चोटी के अर्थशास्त्रियों का मानना है कि अगर सरकार पूरा जोर लगाकर कोशिश करे, लोगों की आमदनी बढ़ाये, स्मार्टफोन व इण्टरनेट को मुफ्त की सीमा तक सस्ता करे तो भी केवल शहरों के बाजारों में लेन-देन को नकदी-मुक्त करने में 10 साल लगेंगे।

सरकार दावा कर रही है कि स्मार्टफोन और कार्डों के जरिये लेन-देन से देश में भ्रष्टाचार खत्म हो जायेगा। सरकार का यह दावा बिल्कुल निराधार और झूठा है। पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका के देशों में औसतन 85 फीसदी से ज्यादा लेन-देन बिना नकदी के होता है, लेकिन इन देशों में खूब भ्रष्टाचार होता है। पिछले दिनों अमरीका में राष्ट्रपति चुनाव प्रचार के दौरान हिलेरी क्लिण्टन पर अज्ञात स्रोतों से अकूत दौलत जमा करने के आरोप लगे थे। इसके अलावा जापान और क्यूबा जैसे देश भी हैं जहाँ नकदी का चलन अपेक्षाकृत ज्यादा होता है, लेकिन भ्रष्टाचार कम है।

इण्टरनेट के जरिये लेन-देन को भ्रष्टाचार का रामबाण इलाज माननेवालों को यह पता होना चाहिए कि मोटी काली कमाई का अधिकांश आवागमन और उसे ठिकाने लगाने का काम इण्टरनेट के जरिये ही होता है न कि लोग ट्रकों और जहाजों में नोट भरकर देश-विदेश में घूमते हैं। आज काले धन को छिपाने के लिए इण्टरनेट पर तरह-तरह की एप्लीकेशन मौजूद हैं। बिटक्वाइन, वालेट और डार्कनेट ऐसे ही साधन हैं। बिटक्वाइन एक क्रिस्टो मुद्रा (डिजिटल नोट, जिसे कम्प्यूटर के जरिये बनाया गया है) है। इसका लेन-देन बिना किसी क्रेडिट कार्ड या बैंक खाते के किया जा सकता है। इसकी कीमत इण्टरनेट पर तैयार की जानेवाली एक जटिल प्रक्रिया (पब्लिक लेजर) से तय होती है। इस मुद्रा का इस्तेमाल इण्टरनेट के जरिये होनेवाले बड़े-बड़े लेन-देन में किया जाता है। विदेशों में रहनेवाले बहुत से धनाढ्य भारतीय इसके जरिये भारत में पैसा भी भेजते हैं। इस नेटवर्क का इस्तेमाल करनेवाले लोगों को नाममात्र की प्रामाणिकता की जरूरत होती है और इसके सदस्यों के बीच होनेवाले लेन-देन को बिल्कुल गुप्त रखा जाता है। 'जेब पे' इसी तरह की लेन-देन करवाने वाली मोबाइल बिटक्वाइन कम्पनी है। ये कम्पनियाँ सालों से भारत में कारोबार कर रही हैं, लेकिन भारत सरकार इनके लिए आज तक कोई कानून नहीं बना पायी है। हवाला कारोबार और बेनामी अल्पकालिक कम्पनियों के जरिये काले धन को ठिकाने लगाने के तो इतने तरीके हैं कि उनके बारे में यहाँ विस्तार से बताना सम्भव नहीं है।

आज जब नाम मात्र के लोगों के पास एटीएम हैं तो भी इनके खातों की सुरक्षा का आलम यह है कि पिछले दिनों 32 लाख एटीएम अचानक हैक हो गये। एटीएम खाते से पैसे गायब होना आम बात हो गयी है। यहाँ तक कि सरकार के पास अभी तक एक मुकम्मल साइबर सुरक्षा कानून भी नहीं है।

जहाँ तक छोटे स्तर के भ्रष्टाचार का मामला है तो यह आज की तरह ही नकदी में किया जा सकता है या फिर एक खाते से दूसरे

खाते में भिजवाने पर भी, दोनों लोगों की रजामन्दी के चलते, सरकार की पकड़ से दूर ही रहेगा। शिकायत होने पर लोग आज भी पकड़े जाते हैं, जाँच भी होती है और बच भी जाते हैं, यह कल भी इसी तरह जारी रहेगा। अगर आप किसी भी कर्मचारी के खाते में रिश्वत के रूप में 1000 रुपये डलवाते हैं तो क्या यह सम्भव है कि बैंक के कर्मचारी पुलिस के साथ आपके पास आयें और यह पूछें कि आपने 1000 रुपये क्यों डलवाये या ऐसा ही दूसरे आदमी के साथ करें?

नोटबन्दी का असली कारण

हम देख चुके हैं कि नोटबन्दी को जनता के फायदे का कदम साबित करने के लिए सरकार जो दलीलें दे रही है, वे पूरी तरह बेबुनियाद हैं। देश की जनता की जेब पर की गयी इस डाकेजनी के असली कारण कुछ और हैं।

सच्चाई यह है कि देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़, सरकारी बैंक दिवालिया होने की कगार पर खड़े हैं। 2008 में जब अमरीका का गृह ऋण बुलबुला फूटने से अमरीका और यूरोप की अर्थव्यवस्था धराशायी हो गयी थी तो पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा था कि हम इसलिए बच गये क्योंकि हमारे पास सरकारी बैंकों के रूप में मजबूत आधार था। लेकिन अपनी ही कही बात के विपरीत पिछली सरकार और मौजूदा सरकार भी सरकारी बैंकों को तबाह करने के काम में लगी रही हैं। 2014 में आयी पी.जे. नायक कमेटी की रिपोर्ट इसकी गवाह है। जो सारतः यह बताती है कि सरकारी बैंकों को किस तरह कमजोर करके निजी व विदेशी बैंकों को बढ़ावा दिया जाये। चोटी के पूँजीपतियों, राजनेताओं और बैंक निदेशकों का एक गठजोड़, बैंक सुधारों के नाम पर इसी काम में लगा है।

नोटबन्दी के सबसे बड़े पैरोकार, मौजूदा वित्तमंत्री अरुण जेटली बैंक सुधारों का झण्डा उठानेवालों में सबसे आगे हैं। गौरतलब है कि बैंक अधिकारियों की मिलीभगत से बैंक पूँजी का इस्तेमाल करके घोटालों को अंजाम देनेवाले शेयर दलाल केतन पारिख का मुकदमा सर्वोच्च न्यायालय में अरुण जेटली ने ही लड़ा था।

भारत के बैंकों का दिवालिया होने के करीब पहुँच जाने के पीछे भी वही कारण है, जो 2008 में अमरीका के लेहमैन ब्रदर्स के दिवालियापन के पीछे था। वहाँ भी बैंक द्वारा दिये गये कर्ज की वापसी ठप्प हो गयी थी और भारत के बैंकों के साथ भी यही हो रहा है। बैंक का मूल काम है--कम ब्याज पर कर्ज लेना और ज्यादा ब्याज पर कर्ज बाँटना। अगर बैंक द्वारा ब्याज पर दिये गये धन की ब्याज समेत वापसी में रुकावट आ जाये तो बैंक पर संकट आ जायेगा।

स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया ने अपने तिमाही परिणाम में गम्भीर घाटा दिखाया है। 2016 की दूसरी तिमाही में बैंक के मुनाफे में 99 फीसदी का घाटा हुआ है। पिछले साल की इसी तिमाही में उसे 4491.70 करोड़ का मुनाफा हुआ था जो इस साल घटकर 20.7 करोड़ रह गया। इस घाटे की जड़ में पूँजीपतियों द्वारा मार लिया कर्ज है जिसे एनपीए यानी ऐसा कर्ज जिसका बैंक को न ब्याज मिले और न ही मूलधन। पिछले एक साल में स्टेट बैंक के एनपीए में 288 फीसदी की वृद्धि हुई है।

मोदी के सत्ता में आने का मुख्य कारण यही था कि कॉंग्रेस पूँजीपतियों की लूट पर नाममात्र का ही सही लेकिन कुछ अंकुश लगा रही थी। पूँजीपतियों को नरेन्द्र मोदी के गुजरात के काम से पक्का विश्वास था कि वह उनके रास्ते को पूरी तरह निष्कंटक कर देगा। मोदी ने सत्ता में आते ही उनके मन की मुराद पूरी कर दी। पूँजीपतियों को अंधाधुंध कर्जे बाँटे गये। साथ-ही-साथ उन पर पहले से मौजूद बैंक के बकाया की ओर से भी मुँह फेर लिया गया। बैंकों में नकदी भरने के लिए जन-धन योजना, कैश सब्सिडी, किसान फसल बीमा जैसी योजनाएँ चलायी गयीं। इससे बैंकों में बड़े स्तर पर नकदी तो जमा हुई लेकिन पूँजीपतियों द्वारा उसे निकालने और वापस जमा न कराने की दर कहीं ज्यादा होने के चलते बैंकों के खजाने खाली होते गये। 2016-17 के वित्त वर्ष के अन्त तक बैंकों का एनपीए बढ़कर 12 लाख करोड़ तक पहुँच जाने का अनुमान है। यह बैंकों में अक्टूबर 2016 में जमा जनता के कुल धन से भी 1.5 लाख करोड़ रुपये ज्यादा है।

सरकार ने 500 व 1000 के जिन नोटों को प्रचलन से बाहर कर दिया है उनका कुल मूल्य 14,17,000 करोड़ रुपये है। नोटबन्दी से इसके बराबर नोट छापने का अधिकार सरकार को मिल गया है। अब सरकार को पुराने नोटों के जमा होने की कोई चिन्ता नहीं है। बल्कि वह चाहती है कि कम नोट जमा हों, क्योंकि पुराने नोटों की कुल कीमत और जमा होनेवाले नोटों की कीमत में जितना अन्तर होगा वह सरकार के खाते में जायेगा। उस अन्तर के बराबर जो नये नोट छपेंगे उनकी मालिक सरकार होगी। जितने कम नोट बैंकों में जमा होंगे सरकार की देनदारी उतनी ही कम होगी।

अब सरकार की कोशिश है कि बैंकों से वापस निकलने वाली नकदी कम-से-कम रहे। ताकि बैंकों के खातों में नकदी की मौजूदगी ज्यादा-से-ज्यादा समय तक बनी रहे। यही कारण है कि नोट जमा करने की सीमा 2.5 लाख व नोट बदलने की सीमा पहले 4 हजार व बाद में घटाकर 2 हजार की गयी। अगर सरकार की यह मंशा न होती तो सरकार एक-एक खाते की जानकारी रखते हुए भी 2.5 लाख के बदले 2.5 लाख दे सकती थी।

नये नोटों की किल्लत का कारण सरकार का जल्दबाजी में किया गया फैसला नहीं है। सरकारें कोई भोले-भाले अनाड़ी लोग नहीं चलाते, बल्कि सबसे घाघ व चालाक लोग चलाते हैं। नोटों की किल्लत का कारण सरकार की चालाकी है। बैंकों में जब तक भारी मात्रा में नकदी मौजूद रहेगी तब तक पूँजीपतियों पर कर्ज वापस लौटाने का दबाव नहीं रहेगा। इसे ऐसे समझा जा सकता है--मानो बैंक में 100 रुपये जमा हैं और उसका एनपीए 10 रुपये है। इस हिसाब से जमा रकम और एनपीए का अनुपात 10:1 है। अगर सरकार के खाते में 200 रुपये हो गये तो यह अनुपात 20:1 या 10:) हो जायेगा यानी बुरा कर्ज अब बैंक की कुल सम्पत्ति का आधा फीसदी रह गया। अब पुराने अनुपात पर वापस आने तक बैंक पूँजीपतियों को नये कर्ज भी बाँट सकता है और पुराने के तगादे में भी ढील दे सकता है। यानी पूँजीपतियों के दोनों हाथों में लड्डू हैं।

यह बात अलग है कि इस कार्रवाई से करोड़ों लोगों को लाइन में लगना पड़ेगा, करोड़ों की रोजी-रोटी उजड़ जायेगी, कितने ही परिवार फुटपाथ पर आ जायेंगे। लोग लाइनों में खड़े-खड़े दम तोड़ देंगे या बेटी की शादी टूट जाने से आत्महत्या कर लेंगे। यह सब तो देश हित में किये गये त्याग में दर्ज हो जायेगा। जो यह त्याग करने में ना-नुकर करेगा व देशद्रोही होगा।

अर्थव्यवस्था का संकट और उसका समाधान

सबसे गम्भीर सवाल यह है कि पूँजीपतियों को लूट की खुली छूट होने के बाद भी बैंकों का बट्टेखाते का कर्ज बढ़ता क्यों जा रहा है? यह कैसी उलटबाँसी है कि कुछ लोगों के पास काले धन के अम्बार लग रहे हैं और दूसरी ओर उन्हीं लोगों की कम्पनियाँ बैंकों का कर्ज नहीं लौटा रही हैं।

इस सवाल का जवाब देश की अर्थव्यवस्था के काम करने के तरीके में छुपा है, यानी देश में तैयार होनेवाली हर तरह की चीजों या माल के तैयार होने--उत्पादन और उसके बँटवारे या वितरण के तौर-तरीके में। सभी जानते हैं कि किसी भी माल का उत्पादन करने और उसे जनता के बीच ले जाकर बाँटने में मेहनत की जरूरत होती है। यह पूरा काम, पूरा समाज मिलजुलकर करता है, समाज के हर हिस्से की अपनी विशेष भूमिका होती है। अगर कोई भी एक हिस्सा अपना काम करना बन्द कर दे तो यह पूरा तंत्र संकट में आ जायेगा। लेकिन इसमें एक बुनियादी नुक्श है। एक ओर जहाँ पूरा समाज एक साथ मिलकर इसको चलाता है वहीं दूसरी ओर इसे चलाने के लिए इस्तेमाल में लाये जानेवाले साधनों (उपकरण, मशीनरी, जमीन आदि) पर, खुले या छिपे रूप में, केवल कुछ मुट्ठी भर लोगों का निजी मालिकाना है।

साधनों पर कब्जे के दम पर पूँजीपति मालिक बन जाते हैं और काम करनेवाले मेहनतकश लोग उनके भाड़े के गुलाम बन जाते हैं। मालिक और गुलाम का यह रिश्ता हमेशा कायम रह सके, इसके लिए एक पूरे सरकारी तंत्र का निर्माण किया गया है। इसे ऐसे दिखाया जाता है, मानो यह मालिक और गुलाम दोनों को एक निगाह से देखता हो। लेकिन यह तंत्र कभी कोई ऐसा काम नहीं करता जिससे पूरे पूँजीपति वर्ग को कोई गहरा या दूरगामी नुकसान हो। तात्कालिक तौर पर कुछ फैसले ऐसे लग सकते हैं जिनसे पूँजीपति वर्ग का नुकसान हो, लेकिन दूरगामी तौर पर वे उनके हित में ही होते हैं। जनता पर अपनी पकड़ मजबूत रखने के लिए पूँजीपति वर्ग जनता के बीच के ही कुछ लोगों को सत्ता व लूट में थोड़ी हिस्सेदारी देकर अपने पक्ष में मिलाता रहता है।

पूँजीपति वर्ग खुद मेहनत का कोई काम नहीं करता, वह केवल इस तंत्र में काम कर रहे मेहनतकशों से उनकी मेहनत का एक हिस्सा चुराकर मुनाफे के रूप में रख लेता है। करोड़ों लोगों की मेहनत की लगातार लूट से पूँजीपति की पूँजी तो लगातार बढ़ती जाती है लेकिन दूसरे छोर पर मेहनतकश जनता लगातार कंगाल होती जाती है। आलम यह है कि आज देश के 1 फीसदी लोगों के पास, देश की कुल सम्पदा का 58.4 फीसदी है। ऊपरी 10 फीसदी लोगों के पास देश की 81 फीसदी सम्पत्ति है। जबकि नीचे के 50 फीसदी के पास कुल 2 फीसदी सम्पत्ति है।

यहाँ से दो समस्याएँ पैदा होती हैं। पहली, जनता लूट का विरोध करती है। दूसरी, जनता की लगातार बढ़ती गरीबी से बाजार सिकुड़ जाता है।

पहली समस्या से पूँजीपति वर्ग पहले से तैयार किये गये अपने सरकारी तंत्र-- राजनेताओं, पुलिस-फौज, अदालत व अन्य विभागों के जरिये व जनता के बीच से अपने घेरे में लिये गये थोड़े से मध्यम वर्ग के लोगों के जरिये निपट ले रहा है।

लेकिन दूसरी समस्या लगातार गम्भीर होती जाती है, क्योंकि मेहनतकश जनता की विशाल आबादी ही सबसे बड़ा खरीदार होती है। अगर इसकी गरीबी के चलते माल नहीं बिकेगा तो मुनाफा कहाँ से आयेगा। नतीजतन मालों का उत्पादन घट जाता है, जिससे लोग बेरोजगार होते हैं और माल की बिक्री और भी कम हो जाती है। ऐसे मौकों पर पूँजीपति वर्ग के समझदार नेता इस वर्ग पर ही दबाव देकर, इसके मुनाफे के हिस्से में कटौती करवाकर और सरकारी तंत्र के जरिये जनता को मुफ्त इलाज, शिक्षा, आवास, खेती में सब्सिडी देकर जनता के एक हिस्से की माली हालत ठीक करने की कोशिश करते हैं, ताकि मालों की बिक्री बढ़ सके। पूँजीपति का मुनाफा बढ़े और लूट की व्यवस्था लम्बे समय जीवित रहे।

अगर पूँजीपति वर्ग के नेता अदूरदर्शी होते हैं तो वे नेता होने के बावजूद अपने वर्ग के दबाव में आकर नाजायज तरीकों से जनता के हिस्से के धन को पूँजीपति को लुटाकर, उसके मुनाफे को बरकरार रखने की कोशिश करते हैं। पूँजीपति वर्ग पर लगनेवाले करों को कम करके उनका बोझ जनता पर डाल दिया जाता है। जनता को मिलनेवाली छूट खत्म करके, उस धन को अलग-अलग तरीकों से पूँजीपतियों को दिया जाता है। पूँजीपतियों के सीधे हमले से मेहनतकशों की रक्षा के लिए बने कानूनों को खत्म कर दिया जाता है। बेरोजगारी को बढ़ानेवाली नीतियाँ लागू की जाती हैं, जिससे पूँजीपतियों को सस्ते-से-सस्ते मजदूर मिलें। इन उपायों से कुछ दिनों के लिए तो पूँजीपति वर्ग को राहत मिल जाती है, लेकिन उसका बाजार तेजी से घटता जाता है। और जनता का गुस्सा बढ़ता जाता है।

आज के दौर में पूँजीपति वर्ग के नेता, भले ही किसी भी पार्टी के हों, लेकिन वे अदूरदर्शी हैं। आज वे पाँच साल से आगे का नहीं सोचते। वे अच्छी तरह जानते हैं कि उनकी अर्थव्यवस्था की हालत असाध्य रोगों से घिरे उस जर्जर बूढ़े शरीर जैसी हो गयी है जिसके दिल, दिमाग, फेफड़े, लीवर जैसे तमाम जरूरी अंग सड़ चुके हैं। एक का इलाज करते हैं तो दूसरे में बीमारी बढ़ जाती है। अब यह व्यवस्था पूँजीपति वर्ग को कोई मुनाफा नहीं दे सकती। उसके मुनाफे की पूर्ति जनता के हिस्से के धन पर सीधी डाकेजनी से ही हो सकती है, चाहे वह बैंकों के जरिये आये, चाहे जनता को मिलनेवाली सुविधाओं को खत्म करके और चाहे पूँजीपतियों को मनमानी छूट देकर।

जब तक इस मरणासन्न अर्थव्यवस्था के बुनयादी नुक्श--उत्पादन सामाजिक और मालिकाना निजी--को पूर्णतः खत्म करके एक नयी अर्थव्यवस्था नहीं बनायी जायेगी तब तक यह इसी तरह लोगों का खून पीती रहेगी।

लेकिन इस काम को करेगा कौन? निश्चय ही इस काम को पूँजीपति वर्ग, उसके राजनेता और समाज के वे दूसरे वर्ग जो इसी अर्थव्यवस्था में मौज की जिन्दगी जी रहे हैं, कतई नहीं कर सकते। इसे अगर कोई पलट सकता है तो वह है मेहनतकश जनता, और उसे निश्चय ही इसे पलटना पड़ेगा। कब? यह समय की बात है।

पूँजीपति वर्ग के नेता इस सच्चाई को बखूबी जानते हैं। इसीलिए वे भले ही किसी भी पार्टी के हों, लगातार जनता के बीच फूटपरस्ती को बढ़ावा देते हैं, प्रचारमाध्यमों पर अपने कब्जे का फायदा उठाकर जनता के बीच भ्रम पैदा करते हैं, जनता के बीच इनसानियत विरोधी विचारों व पुरानी सड़ी-गली मूल्य-मान्यताओं को बढ़ावा देते हैं।

आज जो भी व्यक्ति अपने आपको जनता के पक्ष में मानता है, उसका फर्ज है कि जनता की एकता को तोड़ने की साजिशों के खिलाफ खड़ा हो और आपसी एकता को मजबूत करने का प्रयास करें। शासक वर्गों द्वारा फैलाये गये भ्रमजाल को समझें और जनता को समझाएँ। अपनी जैसी सोच रखनेवाले और अपने जैसी हैसियत वाले दबे-कुचले लोगों से एकताबद्ध होकर दुनिया में हुए और हो रहे बदलावों को समझें और ऐसे समाज का सपना साकार करने के काम में लगें, जिसके बारे में भगत सिंह ने कहा था--**जहाँ एक आदमी द्वारा दूसरे आदमी की और एक देश द्वारा दूसरे देश की लूट न हो।** यह सपना मौजूदा निजी मालिकाने की व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन द्वारा ही पूरा हो सकता है। इसके लिए जनता के बीच जाकर सामुहिकता के विचार पर आधारित मेहनतकश जनता के अलग-अलग वर्गों के नये संगठन बनाये जायें। उन संगठनों को मुट्ठी की तरह एक करके मौजूदा लुटेरी व्यवस्था पर प्रहार किया जाये। हम तमाम जन-हितैषी लोगों से कन्धे से कन्धा मिलाकर इस कार्य को आगे बढ़ाने का आह्वान करते हैं।

इंकलाब जिन्दाबाद!